अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, वर्तमान और भविष्य

किसी भी संस्कृति की सुरक्षा और विस्तार के लिए चाणक्य नीति के अनुसार चार सूत्र महत्वपूर्ण माने जाते हैं। (1) साम (2) दाम (3) दण्ड (4) भेद। साम का अर्थ सामंजस्य अथवा विचार मंथन तथा दाम का अर्थ लोभ लालच से माना जाता है। दण्ड और भेद का अर्थ स्वतः स्पष्ट है। हर संस्कृति समय समय पर चारों तरीकों का उपयोग करती है। किन्तु इसके बाद भी हर संस्कृति का किसी एक तरीके के साथ अधिक जुडाव होता है और वह तरीका उस संस्कृति की पहचान बन जाता है। वर्तमान में चार संस्कृतियॉ आपस में प्रतिस्पर्धारत हैं। (1) भारतीय संस्कृति (2) इस्लामिक संस्कृति (3) पाश्चात्य संस्कृति (4) साम्यवादी संस्कृति। भारतीय संस्कृति ब्राहमण प्रधान संस्कृति मानी जाती है क्योंकि इस संस्कृति में विचार मंथन को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। इस्लामिक संस्कृति क्षत्रिय संस्कृति मानी जाती है, क्योंकि उसमें शक्ति प्रयोग को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। पाश्चात्य संस्कृति पूँजीवाद पर टिकी होने के कारण वैश्य तथा साम्यवादी संस्कृति वर्ग संघर्ष को प्रथम शस्त्र के रुप में उपयोग करने के कारण शुद्र संस्कृति मानी जाती है। भारत में किसी भी परिस्थिति में भिन्न विचारों के लोग बैठकर विचार मंथन करते थे और उसे शास्त्रार्थ कहते थे। शास्त्रार्थ को भारत में सबसे अधिक सम्मान प्राप्त था। इस्लामिक, पूँजीवादी तथा साम्यवादी देशों का जीत हार का पैमाना दुनिया जानती है।

मूल अधिकार चार होते है–(1)जीने की स्वतंत्रता (2)अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (3)सम्पत्ति की स्वतंत्रता (4)स्वनिर्णय। भारतीय संस्कृति इन चारों अधिकारों को प्रकृति प्रदत्त मानती है। इस्लामिक संस्कृति इन्हें समाज प्रदत्त, पाश्चात्य संस्कृति संविधान प्रदत्त तथा साम्यवादी संस्कृति महत्वहीन मानती है। भारत में समाज सहित किसी भी अन्य इकाई को मौलिक अधिकार में उसकी सहमति के बिना कोई कटौती करने का तब तक अधिकार नही जब तक उसने किसी अन्य व्यक्ति के वैसे ही मौलिक अधिकारों का उल्लंघन न किया हो। इस तरह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी भारतीय संस्कृति में पूरी तरह प्रकृति प्रदत्त मानी गई है और ऐसी स्वतंत्रता में उसकी सहमति के बिना कोई कटौती नहीं की जा सकती।

स्वतंत्रता और उच्श्रृंखलता में बहुत फर्क होता है। दोंनो के बीच एक महीन सीमा रेखा हुआ करती है, जिसका उल्लंघन अनुशासन हीनता या अपराध माना जाता हैं। यह सीमा रेखा न प्रकृति द्वारा निर्धारित होती है, न समाज द्वारा और न सरकार द्वारा। यह सीमा रेखा व्यक्ति समूह अपनी अपनी इकाइयों में साथ बैठकर विचार विमर्श द्वारा स्वयं निर्धारित करते है। इसका अर्थ हुआ कि पारिवारिक मामलों में परिवार,गॉव,संबंधी मामलों में गॉव समाज संबंधी मामलों में समाज तथा राष्ट्रीय मामलों में सरकार सीमा रेखा तय करती है। यह रेखा आपसी सहमति या सर्वानुमति से बनाई जाती है और ऐसी बनी हुई रेखा का उल्लंघन अनुशासन हीनता माना जाता है। इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक इकाई अपने आंतरिक मामलों में एक संगठन के रुप में काम करती है। ऐसे संगठन में आंतरिक रुप से बैठकर किसी भी मामले में विचार रखने की आंतरिक स्वतंत्रता होती है और बाहर में विचार रखना सबकी सहमति से ही संभंव है। यदि किसी इकाई का सदस्य अनुशासन भंग करता है तो उसे इकाई दण्डित भी कर सकती है, किन्तु उस दण्ड में भी उसकी सहमति आवश्यक है। अन्यथा वह व्यक्ति अपने संगठन को छोड़ सकता है, या हटाया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति ने किसी अन्य के मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया तो केवल उसी परिस्थिति में राज्य उसे दण्ड दे सकता है, अन्य मामलों में नहीं। इसी तरह परिवार,समाज या अन्य इकाइयॉ किसी मामले में किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं कर सकती, सिर्फ उनका बहिष्कार ही कर सकती है।

भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक मौलिक अधिकार है। किन्तु हमारे संविधान निर्माताओं ने भारतीय संस्कृति की मूल अवधारणा को न समझ कर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को संवैधानिक अधिकार मान लिया। सच बात तो यह है कि भारत के अतिरिक्त अन्य किसी भी संस्कृति को मूल अधिकार की वास्तविक परिभाषा का ज्ञान ही नहीं था। यही कारण रहा कि भारतीय संविधान निर्माता भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को संवैधानिक अधिकार मानने की भूल कर बैठे। आज यदि भारत में संवाद की परम्परा टूटकर विवाद के रुप में सामने आ रही है तो उसका यह महत्वपूर्ण कारण है कि सरकार या संविधान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और उच्श्रृंखलता के बीच कोई सीमा रेखा बनाकर उसका पालन कराने में असमर्थ दिख रहा है। भिन्न विचारों के लोग एक साथ बैठकर विचार मंथन करें,संवाद करे, निष्कर्ष निकाले,ऐसा वातावरण न बन रहा है, न ही बनने दिया जा रहा है। अलग अलग संगठन निरंतर संवाद की जगह विवाद पैदा कर रहे है। स्वतंत्रता के बाद संवाद को लगातार निरुत्साहित किया गया। नरेन्द्र मोदी के आने के पूर्व तक भारतीय राजनीति या तो मुस्लिम तुष्टिकरण के मार्ग पर चलती रही अथवा साम्यवाद के मार्ग पर। स्पष्ट है कि दोंनो ही संस्कृतियॉ कभी संवाद की पक्षधर नहीं रही। संवाद के वातावरण के विरुद्ध कोई संवाद समर्थक वातावरण बनाने वाली इकाई भी खडी नहीं हुई। संघ परिवार सामने भी आया तो उसका मार्ग भिन्न नहीं था। मैं

मानता हूँ कि नरेन्द्र मोदी के आने के पूर्व का वातावरण ऐसा नहीं था कि संघ परिवार संवाद के मार्ग को महत्व दें। किन्तु अब पिछले डेढ़ दो वर्ष से तो वातावरण बदलने के लक्षण दिख रहे है। फिर भी पता नही क्यों कुछ लोग संवाद को छोडकर उसी विवाद की लाईन पर चलना चाहते है जिस लाईन पर 67 वर्षो तक चला गया। यदि 67 वर्षो तक भारतीय संस्कृति को दोयम दर्जे का बनाकर रखा गया और आज उस गुलामी से मुक्ति हो रही है, तो मैं नही समझता कि हम मुक्ति की खुशी मनाने की वजाय गुलाम बनाने वालो को गुलाम बनाकर रखने की बदले की भावना से क्यों ग्रस्त है। एक डेढ़ वर्ष पहले का जो वातावरण था उस वातावरण ने परिस्थितियों को बदलने का मार्ग खोला। एकाएक उस खुली हवा का लाभ उठाकर कुछ लोग बदला लेने का भावना पर उत्तर आये। गोमांस,गोहत्या और मंदिर जैसे मुद्दों को आगे उछालने का परिणाम बिहार में देखा गया। बिहार का परिणाम हमने मालदा और पूर्णिया में देखा। क्या यह उचित नहीं होगा कि हम इस्लामिक संस्कृति की नकल करना छोड़कर भारतीय संस्कृति को आगे लाने का प्रयत्न करे। जिसका अर्थ है संवाद अर्थात् अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वनिर्मित सीमाएँ। हम यदि संगठन बनाते है तो उसका प्रभाव आंतरिक ही होना चाहिए। संगठन के बाहर के लोगों की स्वतंत्रता पर हमारे संगठन का दूष्प्रभाव न पडें। यदि हमारे संगठन, चाहे वे किसी भी विचारों वाले क्यों न हो, यदि अपनी सीमाओं का उल्लंघन करते है तो हमारा कर्तव्य है कि हम ऐसे संगठनों को बहिष्कृत करें और फिर भी न माने तो राज्य को मजबूर करें। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और संवाद परम्परा को प्रोत्साहित करना वर्तमान समस्याओं का महत्वपूर्ण समाधान है सौभाग्य से पिछले एक डेढ वर्ष से वातावरण में बदलाव आया है और हमें ऐसे बदलाव को प्रोत्साहित करना चाहिए।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और उच्श्रृंखलता के बीच सीमा रेखा पर भी सोचा जाना चाहिए। हम देख रहे है कि आमतौर पर संगठन भावनाओं पर आघात का बहाना बनाकर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित करते है। पहले तो इस्लामिक और सिख संगठन ही ऐसा आघात पहुँचाते थे किन्तु अब तो महिला संगठन, हिन्दू संगठन, आदिवासी, हरिजन संगठन, भी बहुत आसानी से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर आघात करने लगे है। किसी महिला को ठीक से कपडे पहनने की सीख देना भी आधुनिक संगठित महिलाओं की भावना भडका देता है। मुस्लिम संगठन तो दिन रात भावनाएँ भडकाने का बहाना खोजते ही रहते है। दिल्ली युनिवर्सिटी में सुब्रमण्यम स्वामी का विरोध अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर सीधा आक्रमण है। इसके पूर्व प्रशांत भूषण द्वारा कश्मीर संबंधी प्रस्तुत विचारों के विरुद्ध हिंसक आक्रमण भी उसी श्रेणी में आता हैं। जब तक कोई विचार प्रस्तुति सिर्फ अभिव्यक्ति तक सीमित है तब तक उसके प्रत्यक्ष विरोध का क्या औचित्य है? यदि आपके विचार भिन्न है तो या तो आप भी अपने भिन्न विचार स्वतंत्रतापूर्वक रख सकते है या आप उनके साथ प्रत्यक्ष बैठकर खुला शांतिपूर्ण वार्तालाप कर सकते है। जुलुस निकालना, विरोध प्रकट करना आदि कभी भारतीय परम्परा नहीं रही। इस इस्लामिक साम्यवादी परम्परा को आधार बनाकर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का गला घोटना घातक है। ऐसी किसी भी प्रवृत्ति को कठोरता से दबाने की आवश्यकता है।

मैं मानता हूँ कि वर्तमान समय में दोष एक पक्ष का नहीं है यदि एक पक्ष कमजोर होता है तो दूसरा पक्ष उस पर हावी होने का प्रयास करता है। इस तथ्य के होते हुए भी यदि हम सब मिलकर दोनों पक्षों को निरुत्साहित करने का प्रयास करें तो वातावरण सुधर सकता है। अन्यथा कम से कम हम इतना तो अवश्य प्रयास करे कि दोनों पक्ष आपस में लडते है तो हम कमजोर का साथ दें। और मजबूत को रोके या कम से कम हम इस लडाई से दूर रहे। मैं अंत में यह कह सकता हूँ कि भारत की जो संवाद प्रणाली है वह सर्वश्रेष्ठ है और हमें अन्य प्रणालियों की नकल करने की अपेक्षा इस दिशा में आगे बढना चाहिए।

साम्प्रदायिक तुष्टिकरण और मुक्ति का मार्ग

स्वतंत्रता के बाद ही भारतीय राजनीति दो परिवारों के बीच ध्रुवीकृत हो गई थी–1. नेहरु परिवार 2. संघ परिवार। नेहरु परिवार सत्ता के साथ जुड़ गया था तथा संघ परिवार विपक्षी दल की भूमिका में था। प्रारंभ में नेहरु परिवार के साथ कुछ तटस्थ लोग भी थे किन्तु धीरे धीरे सब सत्ता से बाहर हो गये या कर दिये गये। फिर भी श्यामा प्रसाद मुखर्जी को छोडकर अन्य ऐसे लोग संघ परिवार के साथ नहीं जुड़ सके । स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही भारतीय राजनीति अल्पसंख्यक,बहुसंख्यक तुष्टिकरण के मार्ग पर चल पड़ी थी। दो ही परिवार दो विपरीत तुष्टिकरण को राजनीति का पहला हथियार बनाकर काम शुरु कर चुके थे। संघ परिवार तो आर्थिक विषयों पर किसी प्रकार की कोई जानकारी नही रखता था, साथ ही उसे विदेश नीति का भी कोई ज्ञान नहीं था। किन्तु नेहरु परिवार आर्थिक मामलों में भी वामपंथ की ओर झुका हुआ था तथा विदेश नीति के मामलों में भी। यद्यपि ये दोनों विषय उसके लिए अल्पसंख्यक तुष्टिकरण के बाद ही प्रयोग में आते थे। नेहरु परिवार बहुसंख्यक हिन्दुओं को आपस में तोड़कर तथा लड़ा भिड़ा कर उन्हें अल्पसंख्यक तथा कमजोर बनाये रखने का पूरा प्रयास करता था। अन्य सभी राजनेता भले ही वे विपक्ष में क्यों न हो हिन्दू समाज को तोड़ने और अल्पसंख्यकों की चापलुसी या वोट बैंक के रुप में उपयोग करने

में प्रतिस्पर्धा करते रहते थे। अकेला संघ परिवार ही ऐसा था जो हिन्दू समाज को जोड़कर तथा एक जुट करके बहुसंख्यक तुष्टिकरण का प्रयास करता था। गॉधी हत्या के बाद संघ परिवार कमजोर पड़ा और कई वर्षो तक भारत में अल्पसंख्यक तुष्टिकरण मजबूती से चलता रहा।

1991 आते आते तक भारत की समाजवादी अर्थव्यवस्था देश को आर्थिक दृष्टि से खोखला कर चुकी थी। 1991 में मनमोहन सिंह ने अर्थव्यवस्था को वामपंथ से हटाकर पूँजीवाद की तरफ मोड़ा। विदेश नीति में भी भारत तटस्थ हुआ। परिवार वाद से भी मुक्ति मिली और उस काल खंड में भारत कुछ स्वतंत्र मार्ग पर चला। उस समय अल्पसंख्यक तुष्टिकरण में भी कुछ कमी आयी थी। किन्तु शीघ्र ही भारत फिर से पुराने मार्ग पर चल पड़ा। अर्थात् वही परिवारवाद,वही अल्पसंख्यक तुष्टिकरण और वही विदेश नीति। आर्थिक मामलों में पूँजीवाद कायम रहा। कुछ वर्षो बाद अटल जी की सरकार आयी। अटल जी ने आर्थिक सुधारों को गति दी, विदेश नीति में भी तटस्थ रहे, अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक तुष्टिकरण से भी अटल जी की सरकार निर्लिप्त रही। किन्तु वह सरकार संघ परिवार को संतुष्ट नही कर सकी। परिणाम हुआ कि अटल जी की सरकार कमजोर पड़ी, और फिर से नेहरु परिवार की छत्रछाया में मनमोहन सिंह की कठपुतली सरकार बनी। मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री होते हुए भी नेहरु परिवार के एक गुलाम से अधिक कुछ नहीं थे। वैसे तो स्वतंत्रता के तत्काल बाद से ही भारतीय राजनीति में दो धाराएँ रही हैं। जिसमें 1. नेहरु परिवार के नेतृत्व में काम कर रहे गुलामों की रही है। इसका आशय है कि कांग्रेस में काम करने वाला उस समय से लेकर आज तक गुलाम से अधिक कुछ नहीं है। प्रारंभ में यह गुलामी कुछ सीमा तक थी और आज सम्पूर्णतः है। वैसे तो संघ परिवार में भी कुछ कुछ ऐसी ही प्रवृत्ति है किन्तु अभी तक सत्ता मजबूत न होने से इसे साफ साफ नहीं कहा जा सकता। मनमोहन सिंह सरकार में अल्पसंख्यक तुष्टिकरण सबसे उपर रहा। बल्कि स्वतंत्रता के बाद इस काल खंड में तुष्टिकरण पूरी तरह नग्न रुप में सामने आया। अल्पसंख्यको का अर्थ बदल कर मुसलमान तक सीमित हो गया। मान लिया गया कि हिन्दू भारत में दूसरे दर्जे का नागरिक है और उसे समान अधिकार प्राप्त नहीं है। इस कालखण्ड में मुस्लिम समुदाय ने हिन्दू समुदाय के साथ कुछ अतिवादी व्यवहार भी शुरु किया, जिसे सरकार ने या तो समर्थन दिया या चुप रही।

ऐसे समय में भारत में पहली बार अल्पसंख्यक समुदाय ने धोखा खाया। यह तो दिख रहा था कि नरेन्द्र मोदी कुछ मजबूत होंगे। किन्तु बहुमत होगा ऐसा उसे स्वप्न में भी विश्वास नहीं था। परिणाम हुआ कि मुस्लिम समाज भाजपा को छोड़कर अन्य गुटों में विभक्त हुआ। और नरेन्द्र मोदी अच्छे बहुमत के साथ चुनाव जीत गये।

नरेन्द्र मोदी ने पूरी राजनीति की दिशा बदल दी। अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक के विचार को पूरी तरह किनारे कर दिया। आर्थिक विकास की गाड़ी तेज गति से चलने लगी। विदेश नीति भी पूरी तरह तटस्थ हो गई। कुछ ही महिनों में ऐसा दिखने लगा कि एक स्वर्णिम युग की राजनीति चल पड़ी है। तीन प्रकार की राजनीति भारत में चलती रही है—1.अल्पसंख्यक तुष्टिकरण 2.बहुसंख्यक तुष्टिकरण 3. तुष्टिकरण मुक्त राज्य व्यवस्था। मोदी के पूर्व अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक के बीच टकराव चलता रहता था जिसमें अल्पसंख्यक तुष्टिकरण निरंतर एक पक्षीय रुप से मजबूत था। मोदी के बाद तटस्थ राजनीति शुरु हुई और कुछ ही महिनों में मोदी सारी दुनिया सहित भारत में छा गये। स्वाभाविक था कि नेहरु परिवार का पतन हुआ। किन्तु संघ परिवार के पेट में इस बात का दर्द हुआ कि सत्ता हाथ में आने के बाद भी हम हिन्दू तुष्टिकरण की राह पर तेज गति से नहीं चल पा रहे। संघ परिवार ने हिन्दू राष्ट्र आरक्षण जैसे मुद्दे उछाल कर अपनी सक्रियता दिखानी शुरु की। गाय,गंगा,मंदिर जैसे मुद्दे कब्र से उखाड़ कर उछाले जाने लगे। प्रयास हुआ कि साम्प्रदायिक मुसलमानों की शह पर पिछली सरकारों ने बहुसंख्यक हिन्दुओं को तोड़ कर तथा दूसरे दर्जे का नागरिक बनाकर रखा है। हम हिन्दू एक झटके में ही टूटन को समाप्त कर एक जुट हो जायेंगे और मुसलमानों को दूसरे दर्जे का नागरिक बनाकर रखेंगे। परिस्थितियों को देखकर कुछ मुसलमानों की भी भाषा बदल रही थी। इसे परिस्थिति के साथ न जोडकर प्रवीण तोगडिया सरीखें लोगों ने अपनी विजय के रुप में प्रचारित किया। यहॉ तक कहॉ जाने लगा कि हम इतने वर्षो के अन्दर भारत में सबको हिन्दू बना देंगे या हम पाकिस्तान को भी अपने साथ मिला लेंगे। सच भी है कि हवाई बातें करने में जो मजा आता है वह व्यक्ति को बहुत आनंद देने वाला होता है। ऐसे ऐसे नासमझ वाक्यों ने हिन्दू समाज को तो एकजूट नहीं किया और अल्पसंख्यक समुदाय सशंकित हो गया,एकजुट हो गया, और फिर से सक्रिय हो गया। छः महिना बीतते बीतते ऐसा लगने लगा कि नरेन्द्र मोदी की गाड़ी की रफ्तार कम हो गई है। मोदी जी ने संभालने का बहुत प्रयास किया किन्तु बहुसंख्यक तुष्टिकरण के हवाई नारे के समक्ष मोदी जी कमजोर पडे। और भारत पूनः आर्थिक विकास से हट कर अल्पसंख्यक ,बहुसंख्यक तुष्टिकरण की राह पर चलना शुरु कर दिया।

अब भारतीय राजनीति में फिर से दो मजबूत गुट दिख रहे है। सम्पूर्ण विपक्ष अल्पसंख्यकों को अपने साथ जोड़कर एक साथ खडा है तो दूसरी ओर संघ परिवार अकेला खडा है। जिसे मोदी जी संतुलित करने का प्रयास कर रहे हैं। पहली बार मोदी जी की स्थिरता में संदेह पैदा हुआ। इससे स्पष्ट हुआ कि भारतीय राजनीति फिर से पुराने मार्ग पर चल पडी है।

यदि वर्तमान भारतीय राजनीति का तटस्थ आकलन करें तो नेतृत्व के लिए सिर्फ दो ही व्यक्ति सामने दिख रहे है 1.नरेन्द्र मोदी 2. नीतिश कुमार। विपक्ष में दो अन्य लोग भी कभी कभी दिख जाते हैं। पहले राहुल गॉधी,और दूसरे अरविंद केजरीवाल। मैं इस संबंध में अपनी व्यक्तिगत धारणा स्पष्ट कर दूँ कि ये दोनों ही व्यक्ति ईमानदार हैं, निहायत शरीफ हैं, राजनैतिक कूटनीति का अभाव है और नेतृत्व क्षमता विहीन हैं। ऐसे पागलों से न कोई उम्मीद की जा सकती है न इनका कोई राजनैतिक भविष्य है। प्रधानमंत्री का सपना देख रहे अन्य सभी लोग किसी न किसी गुट के साथ हो जायेंगे और उनका स्वतंत्र अस्तित्व न रहेगा न रहना चाहिए। राजनीति दो ही दिशाओं मे आगे बढ़ती दिख रही है। नरेन्द्र मोदी आगे चल रहे हैं तथा नीतिश कुमार उन्हे टक्कर देने की तैयारी कर रहे हैं। नीतिश कुमार मोदी की अपेक्षा अधिक लोकतांत्रिक हैं ,विश्वसनीय हैं किन्तु नीतिश कुमार अल्पसंख्यक तुष्टिकरण तथा लालू प्रसाद को साथ लेकर चलने की मजबूरी से भी पीड़ित हैं। इसके बाद भी उनके हर वाक्य में गम्भीरता झलकती है। जिस समय नरेन्द्र मोदी की पाकिस्तान यात्रा का सबने विरोध किया था तब नीतिश कुमार ने लीक से हटकर इस यात्रा का समर्थन किया। इससे उनकी निष्पक्षता और योग्यता पर विश्वास बढ़ता है। वैसे भी नीतिश कुमार वीजेपी के साथ मिलकर बिहार में सफलतापूर्वक सरकार चला चुके हैं और उन पर किसी प्रकार के तुष्टिकरण का कोई आरोप नही लगा भले ही वे नई परिस्थिति में अल्पसंख्यकों की ओर कुछ झुके हुए दिख रहे हों।

यदि हम भारतीय राजनीति का कोई सबसे अच्छा हल निकालने की कल्पना करें तो वह तो नीतिश कुमार ,नरेन्द्र मोदी के एक साथ मिलकर सरकार चलाने से ही सम्भव दिखता है। यह सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। इससे अल्पसंख्यक,बहुसंख्यक तुष्टिकरण से भी मुक्ति मिल जायेगी,तथा कांग्रेसियों को भी नेहरु परिवार की गुलामी से मुक्ति मिल जायेगी, साथ ही भारत की राजनीति में परिवारवाद भी दफन हो जायेगा। परन्तु ये सब उसी तरह हवाई बाते है जैसी प्रवीण तोगडिया की हिन्दूकरण की। वास्तविकता इससे कहीं दूर है और स्पष्ट दिखता है कि दूसरा मार्ग अर्थात् मोदी नीतिश कुमार के बीच राजनैतिक रस्साकसी ही एक मात्र संभव मार्ग है। यदि ऐसा भी होता है तो यह हमारे लिए शुभ लक्षण है। दोनों में से कोई भी प्रधानमंत्री होगा लेकिन अवांछित तत्व मजबूत नही हो पायेंगे। मेरे विचार से तो हमें इस दूसरे मार्ग को ही प्रोत्साहित करना चाहिए। हमारा कर्तव्य बनता है कि हम नरेन्द्र मोदी और नीतिश कुमार के बीच राजनैतिक ध्रुवीकरण को मजबूत करें।

सुभाष बाबू की गुप्त फाइलों के प्रगटीकरण की एक समीक्षा

स्वतंत्रता संघर्ष में सुभाषचन्द्र बोस का योगदान एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना रही है। सुभाषचन्द्र बोस ने अपनी सारी सुख सुविधाएँ छोड़कर,परिवार तथा मित्रों से दूरी बनाकर, जो कष्ट झेले वे कोई सहज कार्य नहीं थे। दिन रात सोते जागते उन्हें भारत की स्वतंत्रता की ही चिन्ता लगी रहती थी। भारत की स्वतंत्रता के लिए वे दुनिया के अनेक देशों की खाक छानते रहे। स्वतंत्रता की याद करते समय सुभाष बाबू के प्रति सहज सरल श्रद्धा भाव से हर भारतीय का सर झुक जाता है।

सुभाषचन्द्र बोस जी कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष रहें। उन्हें पार्टी में पूरा पूरा समर्थन प्राप्त था। आमतौर पर विचारधारा के रुप में वे गॉधी जी के प्रत्यक्ष प्रतिद्वंदी थे। सुभाषचन्द्र बोस मानते थे कि गुलाम देश में तानाशाह के समक्ष या तो कायरों के समान रहना पढ़ता है या शत्रु के समान। दूसरी ओर गॉधी इन दोनों से हटकर एक तीसरा प्रयोग कर रहे थे जिसमें अहिंसा को एक शस्त्र के समान उपयोग करना था। कांग्रेस पार्टी के चुनाव में अधिकांश लोगों ने सुभाषचन्द्र बोस की नीतियों के पक्ष में वोट दिया किन्तु जब विश्वास और विचार आमने सामने टकरा गये तब गॉधी के प्रति विश्वास मजबूत पड़ा और सुभाषचन्द्र बोस को त्यागपत्र देना पड़ा। मैं महसूस करता हूँ कि स्वतंत्रता संघर्ष के लिए गॉधी मार्ग ठीक था और सुभाष मार्ग गलत। आज गॉधी मार्ग से प्राप्त स्वतंत्रता और सुभाष मार्ग से प्राप्त स्वतंत्रता का आकलन करें तो स्थिति स्पष्ट हो सकती है। मैं यह मानता हूँ कि यदि सुभाष मार्ग से भारत स्वतंत्र होता तो वह विभाजित नहीं होता किन्तु साथ साथ यह भी सच है कि सुभाष मार्ग से भारत आज तक स्वतंत्र नहीं होता क्योकि स्वतंत्रता के पूर्व विश्व युद्ध की हार को जीत में बदलना आवश्यक था और यदि जीत हो भी जाती तो वैसी स्वतंत्रता नहीं मिलती जैसी आज है। यदि सुभाष बाबू ने गॉधी का साथ दिया होता तो स्वतंत्रता जल्दी भी मिल सकती थी और गॉधी ने सुभाष बाबू का साथ दिया होता तब भी परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हिटलर सरीखों के साथ मिलकर ब्रिटेन की गुलामी से मुक्ति महंगी भी पड़ सकती थी। मैं आज भी सुभाष बाबू के

मार्ग की अपेक्षा गॉधी मार्ग का अधिक पक्षधर हूॅ यद्यपि मेरे मन में सुभाष बाबू की त्याग तपस्या के प्रति पूरा सम्मान है।

सुभाष जयन्ती के अवसर पर सुभाष बाबू की मृत्यु के समय की घटनाओं के संबंध में गुप्त रखी गई कई फाइलें खोली और पढ़ी गई। कोई नई बात सामने नहीं आई। नेहरु और सुभाष के आपसी सम्बंधों पर एक अस्पष्ट बात सामने आई। नेहरु जी ने क्या कहा, किस परिस्थिति में कहा, किस भाषा में कहा यह स्पष्ट नहीं है। यह सही है कि नेहरु जी और सुभाष बाबू राजनैतिक प्रतिद्वंदी थे। नेहरु जी गॉधी जी की कृपा से प्रधानमंत्री बनना चाहते थे और सुभाष बाबू गॉधी का विरोध करके। हो सकता है कि नेहरु जी ने वैसा कहा भी हो तो आज दोनों जीवित नहीं है। हम ऐसी बातों को दूर तक उछालकर क्या प्राप्त करना चाहते हैं? मुझे विश्वास है कि यदि नेहरु जी ने ऐसा कुछ लिखा भी होगा तो यह बात किसी भी रुप में गॉधी की जानकारी में तो नहीं ही होगी।

विमान दुर्घटना में या तो नेताजी की मृत्यु हुई होगी या बचकर रुस चले गये होंगे। वे या तो रुस की जेल में मरे होंगे या स्वेच्छा से नाम बदल कर रहे होंगे। सच्चाई चाहे जो हो किन्तु एक बात तो सच है कि अब वे जीवित नहीं हैं। हम इस बात को जानने के लिये इतने सक्रिय क्यों हैं? पिछली सरकार ने रहस्य पर पर्दा रखा और यह सरकार भी रख रही है तो अवश्य ही कोई खास बात होगी? यदि हम किसी तरह सच जान भी लें तो लाभ शून्य और हानि बहुत हो सकती है। ऐतिहासिक सच खोजना इतिहासकारों का काम है, हम आपका नहीं। यदि कोई बात उचित होगी तो समय पर अपने आप आ जायगी।

सुभाष बाबू की मौत की सच्चाई जानने के लिए अब तक तीन आयोग बन चुके हैं। करोडों रुपया और कीमती समय बर्बाद हो चुका है। अलग अलग निष्कर्ष आ चुके हैं। एक जांच और करा ली जाये तो क्या विश्वास है कि उस जांच पर सब सहमत हो जायेंगे। जिन्हें सिर्फ प्रश्न ही खड़े करना है वे उनके बाद भी नये प्रश्न खड़े करेंगे ही। न उन्हें कोई और काम है, न उनका कोई पैसा खर्च होना है। लाभ में बयान टी वी में आ ही जायगा। आज देश की जो हालत है, किसान आत्महत्या कर रहे हैं, प्रधानमंत्री विदेशों से उधार मांग रहे हैं,हम समय पर कर्ज नहीं पटा पा रहे हैं। ऐसी स्थिति में क्या यह उचित नहीं होगा कि हम ऐसे विवादास्पद संदर्भो की जांच पर होने वाले व्यय की कोई सीमा तय करें? कहीं न कहीं तो हमें जांच को समाप्त करना ही होगा क्योंकि हम ऐसी जांचो पर असीमित साधन खर्च नहीं कर सकते। गॉधी हत्या की जांच बाकी ही है कि गोडसे को प्रेरित करने में किसका हाथ था? लाल बहादुर शास्त्री या श्यामाप्रसाद मुखर्जी प्रकरण की जांच क्यों नहीं होनी चाहिए? क्या ये सब लोग कम महत्वपूर्ण थे? और यदि थे तो हम सिर्फ जांच ही करते रहेंगे या और भी काम हैं।

मेरा मत है कि सुभाष बाबू के मृत्यु प्रकरण को उछालने से भाजपा या तृण मूल कांग्रेस को बंगाल चुनाव में कुछ लाभ हो सकता है किन्तु देश को कोई लाभ नहीं होगा। मेरे विचार में इस प्रकरण की चर्चा को यहीं समाप्त करके इसे सरकार के निर्णय पर छोड़ देना चाहिए।

महिलाओं का मंदिर प्रवेश

महाराष्ट्र के एक मंदिर में कुछ निश्चित उम्र तक की महिलाओं का प्रवेश वर्जित रहा है। इस नियम के विरुद्ध कुछ महिला संगठनों ने बलपूर्वक प्रवेश करने का प्रयत्न किया। जिसके पक्ष विपक्ष में दो गुट बन गये, और दोनों गुटों में बलप्रयोग प्रारंभ हो गया। देश भर में इस घटना के पक्ष विपक्ष में विवाद शुरु हो गया। विचारणीय प्रश्न है कि इस विवाद में गलत कौन है, और किसे दण्डित होना चाहिए।

ऐसे ही विवादास्पद मुददे मुसलमानों में भी यदाकदा उठते रहते है कि महिलाओं को नमाज पढ़ने के किस सीमा और कहॉ कहॉ अधिकार हैं। सिक्खों के धर्म स्थानों में प्रवेश के लिए भी कुछ नियम बने हुए हैं। अनेक हिन्दू मंदिरों में गैर हिन्दूओं का प्रवेश वर्जित है। अनेक मंदिरों में सिर्फ महिलाओं को ही प्रवेश की अनुमति है और पुरुष उन मंदिरों नहीं जा सकते। राजस्थान के पुष्कर जी ने सावित्री का ऐसा ही मंदिर है। आन्ध्रप्रदेश के विशाखापटनम के कामाख्या देवी का मंदिर अथवा उ0 प्र0 के चंदौली जिला का मंदिर सकलडीहा में स्थापित मंदिर में भी पुरुष प्रवेश वर्जित है। और कहीं कहीं ऐसी भी नियम हैं कि धर्म स्थान में प्रवेश के पूर्व प्रवेशकर्ता की पोषाक कैसी होनी चाहिए। इस तरह के प्रश्न भी अनेक बार विवाद पैदा करते रहते हैं या भविष्य में कर सकते हैं।

विचारणीय प्रश्न यह है कि उक्त मंदिर की व्यवस्था का अंतिम अधिकार किसका है–1 ट्रस्ट का 2. हिन्दू समाज का 3. सम्पूर्ण समाज का 4.सरकार का। यह भी विचार करना पडेगा कि मंदिर की सम्पत्ति किसके अधिकार क्षेत्र की है। मेरे विचार में मंदिर संबंधी व्यवस्था में अंतिम निर्णय करने का अधिकर न तो सम्पूर्ण समाज का है न ही सरकार का। यह तो ट्रस्ट निर्णय कर सकती है या स्थानीय हिन्दू समाज। यदि नियम गलत है तो गलत नियम को बदलने का तरीका क्या हो और कौन बदलेगा यह स्पष्ट करना आवश्यक है। महाराष्ट्र के मंदिर में या अन्य स्थानों

पर भी नियमों में बदलाव के लिए जिस तरह की गुण्डागर्दी करने का प्रचलन बढ रहा है वह घातक है। गुण्डागर्दी करने वाले भी अपने को राजा राममोहन राय से कम कभी नहीं कहते। ऐसे लोग यह भूल जाते है कि उस समय देश गुलाम था और आज स्वतंत्र। बदलाव के लिए या तो ट्रस्ट को सहमत किया जाना चाहिए था या स्थानीय समाज के हिन्दूओं के बीच जनमत जागरण द्वारा बहुमत बनाने का सहारा लेना चाहिए था । लेकिन दोनो आधारों को छोड़कर कुछ महिलाएँ वहॉ बलपूर्वक जाने और नियम तोडने का प्रयास करती दिखीं। यह प्रयास पूरी तरह अपराध की श्रेणी में आता है। महिलाओं को मंदिर में प्रवेश का अधिकार होना चाहिए यह सही है किन्तु अधिकार बलपूर्वक लेने का अधिकार किसी भी स्थिति में नहीं दिया जा सकता, यह भी सही है। मंदिर प्रवेश का अधिकार देना समाज का कर्तव्य है किन्तु प्रवेशकर्ता का अधिकार नहीं। क्योंकि प्रवेश संबंधी नियम बने हुए है। और नियमों को नियमानुसार बदले बिना तोडने के परिणाम अच्छे नहीं हो सकते।

महाराष्ट्र के मंदिर में प्रवेश करने वाली महिलाओं के विषय में ऐसी भी बात सामने आयी है कि उनमें से अधिकांश का मंदिर में पूजा पाठ से कोई संबंध नहीं है। उस क्षेत्र के शनिदेव के मंदिर को छोडकर अन्य मंदिरों में प्रवेश वर्जित नहीं है । सर्वे किया जाना चाहिए कि इन नियम तोडने वाली महिलाओं में से कितनी कभी वर्ष में एक बार भी किसी अन्य मंदिर में जाती रही हैं।यदि एकाएक इन महिलाओं मे धर्म और मंदिर के प्रति इतनी अपार श्रद्धा उमडी है तो यह हिन्दू धर्म के लिये एक शुभ लक्षण है और यदि इनमें से अधिकांश का मंदिर पर विश्वास नहीं तो ऐसी छिटपुट समाज तोडक महिलाओं को महत्व देने वालो की भी नीयत पर संदेह पैदा होता है। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने ऐसी समाज तोडक महिलाओं को महिलाओं का प्रतिनिधि मानने की गम्भीर गलती की है। यदि मुख्यमंत्री इस संबंध में जनमत जानना चाहें तो उस क्षेत्र के 25 से 50 गावों की सम्पूर्ण आबादी की हिन्दू महिलाओं के बीच मतदान करा कर देखें । आजकल एक दो प्रतिशत आधुनिक महिलाएँ राजनेता को अपने साथ जोडकर जिस तरह धींगामुस्ती का वातावरण बना रही हैं उसमें भले ही अभी वे सफल हो जायें किन्तु यह परम्परा सम्पूर्ण समाज के लिए घातक होगी। चाहे वह हिन्दू समाज हो या कोई अन्य समाज।

समय आ गया है कि भारत की 98 प्रतिशत शांतिप्रिय महिलाएँ इन दो प्रतिशत परिवार तोडक, समाज तोडक, आधुनिक महिलाओं के विरुद्ध एकजुटता का वातावरण बनावें। समाज को महिला और पुरुष के बीच बांटने का प्रयत्न राजनेताओं के लिए लाभकारी हो सकता है, कुछ आधुनिक महिलाओं को भी हाई लाईट होने का अवसर दे सकता है, किन्तु सम्पूर्ण समाज के लिए घातक ही होगा। मेरा विचार है कि महाराष्ट्र के इस मंदिर प्रवेश मामले के निपटारे के लिए मंदिर के आसपास के 50 गावों की महिलाओं का जनमत मतदान द्वारा लिया जाना चाहिए, और तब इस विवाद का वास्तविक समाधान हो जाएगा। अभी जैसा लक्षण दिख रहा है उसके अनुसार ये महिलाएँ अपने उद्देश्य में सफल हो जायेगी, जो 1.

प्रश्नोत्तर

1 राजेन्द्र भारतीय,इंदौर म0 प्र0, ज्ञानतत्व–62977

प्रश्नः–ज्ञानतत्व पाक्षिक अंक 325 का साहित्य शीर्षकान्तर्गत लेख में आपके तुलनात्मक विचारों का अध्ययन किया, प्रभावित भी हुआ किन्तु मन संतुष्ट न हुआ। मस्तिष्क सुस्पष्ट समाधान प्राप्त न कर स्वयं उहापोह में पड़ गया। अनेक प्रश्नों ने हृदय मस्तिष्क को आन्दोलित कर दिया जो कुछ निम्नानुसार हैं। कृपया समाधान करेंगे।

1.विचार क्या है? साहित्य क्या हैं? यह कहीं स्पष्टतः परिभाषित नहीं है। स्पष्ट विवेचन नहीं मिलता कि साहित्य इसको कहते हैं या विचार इसको कहते हैं। जब तक इनकी भिन्नता स्पष्ट नहीं होगी तो तुलना भी अस्पष्ट ही होगी। विचार और साहित्य पर मेरी सोच कुछ इस प्रकार है–

1. विचार पहले है, साहित्य बाद में।
2. साहित्य विचार का अनुगामी होता है।
3. विचार जब बातचीत में व्याप्त होता है तो आदान प्रदान की यह भाषा वाक भाषा होती है। जब वाक भाषा को लिपि मिल जाती है तब यह जरुरी नहीं होता कि विचारों के आदान प्रदान हेतु व्यक्ति या व्यक्ति समूह का होना जरुरी हो। विचारों का आदान प्रदान लिखित भाषा में भी संभव हो जाता है। जब कोई बात विचार लिखित भाषा में व्यक्त होने लगता है वह बात विचार ही साहित्य का रुप धारण कर लेता है ।
4. विचार स्थिर नहीं होते। ये युगीन परिस्थितियों की, आसपास के सामाजिक प्राकृतिक वातावरण की ,देन होते हैं इसलिए ये भी परिवर्तनशील जगत के साथ परिस्थिति अनुसार बदलते रहते है। इसलिए इनके प्रति प्रतिबद्ध नहीं हुआ जा सकता। प्रतिबद्ध रहना भी नहीं चाहिए। जो विचार सार्वजनिक और सार्वत्रिक दृष्टि से सत्य के रुप में,

विज्ञान के रुप में, जगत कल्याणकारी स्वरुप में मान्य हों, वैसे सत्य को पूर्ण रुप में पाना असंभव है। अनन्तकाल के सत्य में से हम नश्वर प्राणी युगानुकूल अंश सत्य को प्राप्त करने की क्षमता तक ही सीमित हैं,मर्यादित है। 5. जीवन जगत के विभिन्न विषयों पर लिखित भाषा में जब विचारों की अभिव्यक्ति होती है तो विषयानुसार ही साहित्य अपना नाम पाता है जैसे–धर्म, समाज, राजनीति, इतिहास, अर्थकला, भाषा ,संस्कृति, विज्ञान आदि साहित्य। साहित्य के कारण विचार सुरक्षित रहता है और यह सामाजिक जनों को युगों तक प्रभावित करता है, उन्हें प्रतिबद्ध बनाये रखता है मगर विचार भी परिस्थितिजन्य युगीन होते हैं। ये स्वयं पर सुख दुखवर्धक,सुविचार कुविचार भी होते है। किसी समय के उपयोगी, प्रचलित विचार किसी काल में अनुप योगी,अव्यावहारिक,हानिकारक सिद्ध होने लगते हैं। अतः मनुष्य को किन्ही विशेष विचारों के प्रति प्रतिबद्ध न होकर सर्वकल्याण की दृष्टि से अपनी युगीन परिस्थितियों के अनुसार अपने विचार व्यवहार में आवश्यक सर्वोपयोगी मानव हितकारी बदलाव लाते रहना चाहिये, प्रतिबद्ध नहीं होना चाहिये, यही जीवनचक्र का क्रम है,सच्चिदानंद की साधना है।

उत्तरः– आपने जो लिखा वह गम्भीर हैं और मैं उससे सहमत हूॅ। विचार और साहित्य एक दूसरे के परस्पर पूरक होते है। जबकि भाषा,विचार और साहित्य दोनों की पूरक। इसका अर्थ हुआ कि भाषा सिर्फ माध्यम है। जबकि विचार और साहित्य एक दूसरे के माध्यम है। मैं आपसे सहमत हूॅ कि विचार देशकाल परिस्थिति अनुसार संशोधित होते रहते है और साहित्य ऐसे संशोधित विचारों के आधार पर लम्बें समय बाद बदलता है। विचार तो हमेशा स्वतंत्र ही होता है यदि विचार प्रतिबद्ध हुआ तो वह अपनी स्वतंत्रता खो देता है। मैं मुख्य रुप से एक विचारक तक सीमित हूॅ। साहित्य के विषय में मुझे कोई विशेष जानकारी नहीं है फिर भी मैंने यह लेख अपनी सामान्य जानकारी के अनुसार लिखा है। आपके विचारों ने इसमें और वृद्धि की है। अन्य पाठक भी कुछ लिखेंगे तो और लाभ होगा।
अच्छा नहीं होगा।

2 टीकाराम देवरानी दिल्ली

प्रश्न– मुनि जी आपने अपने लेख साम्प्रदायिक तुष्टिकरण और मुक्ति का मार्ग मे लिखा है, कि अरविन्द केजरीवाल और राहुल गांधी दोने पागल है तो आपने गंभीरता से लिखा है या समान्यता चलते फिरते लिख दिया है और आपने गंभीरता से लिखा है तो आपको अरविन्द केजरीवाल और राहुल गांधी मे ऐसे कौन से लक्षण दिखे। कृप्या विस्तार से स्पष्ट करें।

उत्तरः–मैंने इस लेख में राहुल गॉधी और अरविंद केजरीवाल के लिए पागल शब्द का प्रयोग किया है। मेरा यह शब्द प्रयोग सामान्यतया नहीं है बल्कि गम्भीरता से है। अब तक राहुल गॉधी के विषय में तो मेरी धारणा प्राथमिक स्तर तक है, सीमित है। क्योंकि उन्हें अभी सत्ता नहीं मिली है। किन्तु अरविंद केजरीवाल के बारे में मैं अपने निष्कर्ष के प्रति गम्भीर हूॅ। केजरीवाल जी के सारे लक्षण उस दिशा को इंगित करते है। कोई व्यक्ति यदि चालाक हो तो उसके पागल होने का खतरा न के बराबर होता है किन्तु ईमानदार अतिपरिश्रमी ,कुशाग्रबुद्धि भावना प्रधान के लिए यह खतरा बहुत बढ़ जाता है। असंभव को संभव करने का स्वप्न देखने वाले ही या तो उच्च शिखर तक पहुॅच पाते हैं अथवा असफल होने पर या तो आत्महत्या करते हैं या पागल हो जाते हैं। अरविंद केजरीवाल जी जितना बड़ा स्वप्न देख रहे हैं वह टूटते ही मेरी बात प्रमाणित हो जायेगी। जिस तरह अरविंद केजरीवाल ने संतुलन खोकर नरेन्द्र मोदी के लिए शब्द चयन किया अथवा जिस तरह एक महिला द्वारा फेकी गई स्याही को हत्या की साजिश करार दिया यह सब उनकी असंगत सोच का परिणाम दिखती है। कल ही उन्होने अरुणांचल में लागू राष्ट्रपति शासन को संविधान की हत्या करार दिया जबकि नीतिश कुमार ने असंवैधानिक तथा कांग्रेस ने संविधान विरुद्ध कार्य बताया। एक मुख्यमंत्री यदि संविधान की हत्या जैसे शब्द प्रयोग करने की आदत डाल ले तो संदेह स्वाभाविक है। राहुल गॉधी में भी ये लक्षण तो हैं किन्तु अभी यह स्पष्ट नहीं है कि वे स्वयं बहुत ऊॅचा सपना देख रहे हैं,या उन्हें सिर्फ दिखाया जा रहा है। धीरे–धीरे यह बात और स्पष्ट हो जायेगी।

3 श्री वैद्यराज आहूजा, भानुप्रतापपुर,कांकेर,छ0ग0 ज्ञानतत्व–364040

प्रश्नः–आपने ज्ञानतत्व 327 में हिन्दुओं और मुसलमानों के संबंधो की चर्चा करते समय तटस्थ और र्निलिप्त भाव के शब्दों का प्रयोग किया। आप बताने की कृपा करें कि दोनो किस प्रकार भिन्न अर्थ रखते हैं तथा भिन्नता क्या है? महाकवि दिनकर ने तटस्थों के विषय में कुछ टिप्पणी की थी उसे भी ध्यान रखियेगा।

उत्तरः– तटस्थ, निष्पक्ष,निरपेक्ष, निर्लिप्त आदि शब्द लगभग समानार्थी होते हुए भी कुछ भिन्न भाव रखते हैं। तटस्थ और निष्पक्ष में भी कुछ न कुछ अंतर अवश्य है किन्तु हम उतनी बारीकी में न जाकर दोंनो को एक श्रेणी में रखते है

और निर्लिप्त तथा निरपेक्ष को दूसरी श्रेणी में। मैंने शब्दों का प्रयोग करते समय इतनी गंभीरता से नहीं सोचा था जितना अब सोचना पड़ रहा है।

जब हम किसी विषय पर विचार, तर्क, विर्तक करते हैं तो आमतौर पर लोग दो पक्ष में बंट जाते हैं। जो व्यक्ति दो विपरीत पक्षों में से किसी पक्ष के साथ पूर्व प्रतिबद्ध न होकर न्याय का पक्ष लेता है उसे तटस्थ या निष्पक्ष कह सकते हैं। ऐसा व्यक्ति चर्चा में शामिल रहता है तथा हस्तक्षेप भी करता है किन्तु अपनी पूर्व प्रतिबद्धता के आधार पर किसी पक्ष से नहीं जुड़ता। किन्तु यदि वह व्यक्ति उक्त विषय पर पक्ष विपक्ष के बीच हो रही चर्चा से दूर रहता है अथवा चुप रहता है तब उसे निरपेक्ष या निर्लिप्त कह सकते हैं।

कल्पना करिये कि किसी चौक पर दो पक्षों के बीच कोई झगड़ा हो रहा है। एक व्यक्ति उधर जाता है और तटस्थ भाव से दोनों को अलग करता है। उसे जिसकी गलती दिखी उसे डांटता भी है। उसी व्यक्ति को हम तटस्थ कह सकते हैं। किन्तु यदि वह व्यक्ति घटना की बात सुनकर अपनी राह बदल ले और दूसरे रस्ते चला जाये तो ऐसा व्यक्ति तटस्थ न होकर निर्लिप्त कहा जाना चाहिए। निर्लिप्त पक्ष विपक्ष में निष्पक्ष हस्तक्षेप न करके विषय से ही दूरी बना लेता है।

आज समाज में आपको अधिकांश लोग या तो प्रतिबद्ध मिलेंगे या निर्लिप्त। तटस्थ तो आपको इक्का दुक्का ही मिलेंगे। दूसरी ओर तटस्थ व्यक्ति ही समाज में सबसे ज्यादा सम्मान पाता है। उसके पास धन या पद न हो तब भी वह ऐतिहासिक सम्मान का पात्र होता है। तटस्थ रहना कठिन होते हुए भी एक उपलब्धि है। श्री रामधारी सिंह दिनकर ने तटस्थ का जो अर्थ लिया उससे मैं सहमत नहीं हूँ।

4 सत्यपाल शर्मा,नवीनगर,बरेली,उ0प्र0, ज्ञानतत्व–166094

प्रश्नः–पाकिस्तान पोषित समर्थित आतंकवादी बार बार भारत के सामरिक ठिकानों अन्य महत्वपूर्ण स्थानों पर हमले करते जा रहे हैं। भारत सरकार पाकिस्तान से विरोध जताकर अपना कर्त्तव्य निभा रही है, उसका कोई सार्थक परिणाम नहीं मिला। पाकिस्तान में जैश ए मोहम्मद सहित मजबूत आतंकवादी संगठन सक्रिय हैं जिन्हें पाकिस्तान की खुफिया एजेन्सी,सेना तथा सरकार का समर्थन प्राप्त है। यदि पाकिस्तान की सरकार ईमानदारी से अपने यहॉ आतंकवादी संगठनों के खिलाफ सख्त कार्यवाही करे तब आतंकवाद के सफाये में मदद मिल सकती है। 2 जनवरी को आतंकवादियों ने पठानकोट के एयरफोर्स वेस पर हमला किया जिसमें भारत के 7 सुरक्षा कर्मी शहीद हो गए। पाकिस्तान में आतंकवाद को पोषण,संरक्षण ,प्रशिक्षण दिया जाता है पाकिस्तान पर विश्वास करना भारत सरकार तथा प्रधानमंत्री की भारी भूल है। आतंकवाद के द्वारा पाकिस्तान का भारत पर कदम युद्ध जैसा कार्य है। दुष्ट पर दया करना कायरता है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी पाकिस्तान द्वारा पोषित आतंकवाद से निपटने में असफल होते जा रहे हैं। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री से समझौता वार्ता करने का झांसा देकर देश की जनता को गुमराह कर रहे हैं। पाकिस्तान कभी भी सच्चा दोस्त नहीं हो सकता है। कृपया अपने विचार से अवगत करायें।

उत्तरः–आपने समस्या तो लिखी किन्तु समाधान नहीं लिखा। पाकिस्तान पर विश्वास करना भारी भूल है। दुष्ट पर दया करना कायरता है। पाकिस्तान कभी सच्चा दोस्त नहीं हो सकता तो यह बात तो सब लोग जानते हैं, इसमें आपने नई बात क्या लिखी। अच्छा होता कि आप यह भी लिखते कि भारत को पाकिस्तान के साथ क्या क्या व्यवहार करना चाहिए। क्या उसे आक्रमण कर देना चाहिए और यादि आक्रमण के बाद चीन उसके पक्ष में आ जाये तब क्या करना चाहिए। और यदि सारे मुस्लिम राष्ट्र आ जाये तब भारत कैसे बचेगा? इसका स्पष्ट उत्तर सोचकर ही आपको इस प्रकार का पत्र लिखना चाहिए । आप कोई सामान्य पाठकों की श्रेणी में नहीं हैं कि बिना सोचे समझे कुछ भी लिख दें। मैने पिछले ज्ञान तत्व में भारत की पाकिस्तान नीति की विस्तृत समीक्षा की है। उस समीक्षा में क्या संशोधन होना चाहिए या क्या गलत है इन सब बातों को भी पढ़कर, समझकर आपका पत्र आना चाहिए।

5 अमर सिंह आर्य,महेशनगर,जयपुर,राजस्थान, ज्ञानतत्व– 754004

प्रश्नः–गत दिनों देश में अनेकों प्रासंगिक अप्रासंगिक मुददे सुनने में आये जैसे गोहत्या, कोलेजियम, सातवॉ वेतन आयोग, सैनिकों की वन रैंक वन पेन्शन, तथा सातवें वेतन आयोग से सेना बलों में रोष,सांसदो विधायको की वेतन वृद्धि,पर्यावरण,नेशनल हेराल्ड विवाद, असहनशीलता, समलैंगिकता, खेती की बदहाली किसान आत्महत्या, बिहार में दो इंजिनियर्स की रंगदारी को लेकर हत्या, बुलंदशहर, नगरपालिका में कर्मचारियों सभासदों में मारपीट।

गोमांस भक्षण पर अनावश्यक विवाद चल रहा है। रघुवंश प्रसाद सिंह जी ने विहार चुनाव को ध्यान में रखकर गोमांस भक्षण विषय में वेद और पुराणों को भी घसीट लिया जबकि वेदों में गाय की हत्या ही निषिद्ध है, मांस

भक्षण का तो प्रश्न ही नहीं है। इस्लाम में भी गोमांस भक्षण की छूट तो है किन्तु अनिवार्य नहीं। अहमद खां से लेकर ख्वाजा हसन निजामी तक तथा अब तो ईमान मुकहारी तक गोहत्या को अनावश्यक मानते रहे हैं।

यदि हम पर्यावरण पर विचार करें तो इन दिनों पर्यावरण पर भी खूब चर्चा हो रही है। कुछ समय पहले पेरिस में दुनिया के सारे देशों ने मिलकर पर्यावरण पर बहुत चर्चा और चिंता की किन्तु कोई अपना स्वार्थ त्यागने को तैयार नहीं। विकसित देश पर्यावरण प्रदूषण अधिक करते है। किन्तु वे विकासशील देंशों को दोष देते हैं।

आपने असहिष्णुता पर भी लिखा। असहनशीलता– यद्यपि कोई मुद्दा नहीं परन्तु कुछ सुविधा सम्पन्न लोग कोई सुविधा न मिलने, उसमें कटौती होने, महत्व न मिलने पर अनावश्यक विवाद खड़ा करते रहते हैं। ऐसे लोगों को कुछ भी बोलने, कैसा भी व्यवहार दुर्व्यवहार करने की छूट चाहिए । यह राजनीति का मामला है। इसे आम आदमी का मुद्दा बनाने के प्रयास होते रहते हैं। मीडिया पत्रिका आदि गैर जिम्मेदारी से कुछ छाप देने की स्वच्छन्दता को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का जामा पहनाने का प्रयास, तथा वातावरण को विषाक्त करते रहते हैं। मोहम्मद सलीम, सी पी एम के सांसद ने 30 नवम्बर की बहस में आउटलुक पत्रिका में गृहमंत्री भारत सरकार के सन्दर्भ से बयान पर आरोप लगाया कि बयान 800 साल बाद किसी हिन्दु शासक द्वारा दिया बयान था। संसद में अध्यक्ष जी ने पूछा कि यह बयान कहॉ दिया गया इसका कोई स्पष्ट उत्तर न देकर पक्ष विपक्ष के सांसदों में अनावश्यक बहस होती रही। केन्द्रीय गृहमंत्री ने कहा कि मैं इस बयान से काफी आहत महसूस करता हूॅ। आउटलुक पत्रिका की ओर से उसी दिन सायं लेख पर खेद प्रकट कर दिया गया। आम लोग भी अब महसूस करने लगे हैं कि संसद में बहस का स्तर गिरता जा रहा है और बहस होते सांसद स्वयं असहनशील हो उठते है।

बढ़ते अपराध, बलात्कार के कारणों का कोई सामाजिक अध्ययन चिन्तन मनन नहीं हुआ। आननफानन में बिल पास हो गया। लोगों की ओर से प्रश्न उठे कि विधेयक के बाद यौन हिंसा की घटनाएॅ रुक जायेगी? अनेकों देशों सउदी अरब कुबैत इरान आदि में दुष्कर्म के लिए सरे आम फांसी अथवा पत्थर से मार मार मौत के घाट उतार देते हैं। जघन्य अपराध की जघन्य सजा मन में खौफ पैदा करती है। हम सबसे बड़े लोकतंत्र तथा हमारा न्यायिक व शासन तन्त्र पुराने ढर्रे का कानूनों का सही रुप से पालन नहीं। कोर्ट फांसी दे दे तो मानव अधिकारवादी फॉसी को उम्र कैद में बदलने को आ धमकते हैं परन्तु मानव अधिकार मानवों के लिए होते हैं दानवों के लिए नहीं।

प्राचीन समाजशास्त्रियों और शिक्षाविदों ने सूक्ष्म दृष्टि में मातृत्व की महत्ता को समझा था। उन्होने उसी अनुसार नारी शिक्षा की दिशा निर्धारित की थी। परिणाम स्वरुप विद्वान बलवान सन्तति उत्पन्न हाने के साथ समाज का चहुमुखी विकास हुआ। आज ये अविश्वसनीय लगता है चूॅकि सब उत्तरदायित्व से भाग रहे हैं। भोग ही जीवन का लक्ष्य सा लगता है। भौतिकता के आगे कुछ दिखाई नहीं देता तो परिणाम भी वैसे ही होंगे। विधार्थी ,बच्चे किससे प्रेरणा ले? कहॉ हैं आज मार्ग दर्शक इस पर क्या कभी सोचा गया?

उत्तरः–आपने जो भी लिखा है उन सबसे मेरी सहमति है। वेदों में क्या लिखा है, कब लिखा गया, अब कुछ संशोधन होना चाहिए कि नहीं यह मेरा विषय नहीं। श्रृष्टि कब बनी किसने बनाई ये सब अंतहीन विवाद के विषय हैं। ऐसे विषयों में या तो इतिहासकार उलझें या शोधकर्ता। मैं तो यह कहने की स्थिति में भी नहीं हूॅ कि प्राचीन समय में मांसाहार या गोमांसाहार प्रचलित था या नहीं। मैंने विष्णु पुराण में खुद पढ़ा कि श्राद्ध में बछड़े का मांस ब्राहमण को खिलाना चाहिए। एक आर्य समाज के विद्वान ने बताया कि यह लेखन प्रक्षिप्त है। यहॉ तक कि विरोधियों ने एक नकली वेद भी बना लिया था। अब बताइये कि मैं इस संबंध में क्या निश्चित करुॅ और उसका लाभ क्या है। मान लीजिए सिद्ध हो गया कि वेदों में गोमांस खाना उचित लिखा है तब भी मैं गोमांस या कोई अन्य मांस खाने का विरोध ही करुॅगा,दूसरी ओर यदि सिद्ध हो जाए कि वेदों में मांसाहार वर्जित है। तब भी मांसाहारी मांस खाना छोड देंगे ऐसा नहीं लगता। इसलिए मैं वर्तमान और भविष्य पर अधिक सोचता हूॅ। शेष काम आप जैसे विद्वानों पर छोडता हूॅ इसलिए मैं कोई उत्तर देना उचित नहीं समझता।

6 श्री राजेश जोशी, जनसत्ता 24 जनवरी

विचार–एक गंभीर और सजग रचनाकर के सामने आज सबसे बड़ी चुनौती इस देश के जनतंत्र को बचाने की है। जो हमने पाया और उसे विकसित किया, उसका मूल स्वरुप सेक्युलर है। हम सबने यह स्वप्न देखा था कि इस जनतंत्र में समानता, समाजवादी समाज एवं सांस्कृतिक धार्मिक बहुलता की जगह हो किन्तु आज हमारे इस स्वप्न व सोच पर ही सबसे बड़ा संकट गहरा गया है। आज हमारे देश का एक बड़ा वर्ग यह चाहता है कि एक सम्प्रदाय का अन्य संम्प्रदायों पर वर्चस्व हो। यदि देश व समाज में बहुसंख्यक का वर्चस्व स्थापित हो जाएगा तो जनतंत्र ही समाप्त हो जाएगा और असहमति की कोई जगह नहीं बचेगी।

आज देश व समाज में असहिष्णुता खत्म नहीं हो रही हैं,बल्कि बढ़ रही है, देवास,मालदा, पूर्णिया की घटनाएँ भी एक तरह की असहिष्णुता ही है। अन्य धर्मो को उकसाकर, भड़काकर, असहिष्णुता फैलाई जा रही है और ये चीजें बार बार उभरकर सामने आ रही है। सरकार के साथ कार्पोरेट हाउस भी चाहता है कि जनतंत्र को सीमित किया जाए, सरकार भी चाहती थी कि भूमि अधिग्रहण के बहाने बहुत सारी जमीन कार्पोरेट सेक्टर को मिल जाए, किन्तु ऐसा हो नहीं पाया और भूमि अधिग्रहण बिल पारित नहीं हो सका।

विकास की अवधारणा पर चुनाव लड़ने वाली पार्टी के नेताओं साक्षी महाराज,निरंजन ज्योति, आदित्यनाथ, गिरिराज किशोर आदि के विवादित बयानों को देख लीजिए। एक गवर्नर बयान दे रहे हैं कि यह हिन्दू राष्ट्र है। कोर्ट में मामला चल ही रहा है और राम मंदिर का मुद्दा उठा दिया गया है। जब विकास के मुद्दे पर चुनाव लड़ा गया था तो ये मुद्दे कहां से आ गये? इन्हें क्यों उठाए जा रहे हैं? एक के बाद एक,तीन लेखकों की हत्याएँ हुई,फिर दादरी कांड हुआ। जितने भी मुद्दे उठाए गए उनमें एक भी विकास के नहीं थे। विकास के मुद्दे उठाए जाते तो दिल्ली और मुम्बई में मुंह के बल क्यों गिरते?

इस केन्द्र सरकार ने सारे जरुरी मुद्दों को दर किनार कर शिक्षा, संस्कृति, इतिहास परिषद,एन बी टी आदि संस्थाओं में अपनी विचारधारा के अयोग्य व अक्षम लोगों को बैठा दिया है। जो इतिहास परिषद में बैठाए गये,उनका इतिहास में कोई गंभीर दखल,अध्ययन नहीं है, तो इस सरकार का चाल,चरित्र व चेहरा तो प्रकट हो ही रहा है। पुणे एफटी आई आई में एक औसत सामान्य कलाकार को बैठा दिया गया, जिसका लगातार विरोध हो रहा है।

किसी भी देश व समाज में दो तरह की सत्ताएँ होती है,एक राजनीतिक सत्ता और दूसरी बौद्धिक सत्ता। बौद्धिक सत्ता उन योग्य,विद्वतजनों से बनती है जो अध्ययन,अध्यापन,सृजन व ज्ञान के विभि्न्न क्षेत्रों में गंभीर काम करते है। कांग्रेस जब तक सत्ता में रही, उसने बौद्धिक सत्ता में दखल नहीं दिया, हस्तक्षेप नहीं किया, किन्तु भाजपा के पास कोई बौद्धिक सत्ता नहीं है, उनके पास कोई बुद्धिजीवी नहीं है।

प्रतिरोध के तरीके बदलते रहते है और समय के साथ आकार लेते है। असहिष्णुता को लेकर पुरस्कार लौटाने वाले 35–36 रचनाकारों ने पुरस्कार वापसी के लिए कोई चर्चा नहीं की और स्वस्फूर्त पुरस्कार लौटा दिए। जो कहते है, पुरस्कार लौटाने वाले वामपंथी है,उन्हें पता होना चाहिए कि प्रसिद्ध लेखक,अशोक वाजपेयी वाम विचारधारा के नहीं है और नयनतारा सहगल ने तो इंदिरा गॉधी के आपातकाल का विरोध किया था। आज 35 लेखकों ने पूरे हालात बदल दिए और बता दिया कि समाज में हमारी भी आवाज है। एक लेखक जब खड़ा होता है तो उसकी आवाज एक बहुत बड़े समाज की आवाज होती है,रचनाकारों की पुरस्कार वापसी अंतरराष्ट्रीय आवाज बनना कोई खेल नहीं है। जो यह कहते है कि रचनाकारों ने प्रसिद्धि पाने के लिए पुरस्कार लौटाए,उन्हें बताना लाजिमी है कि प्रसिद्धि मिलने के बाद ही साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त होते है,उन्हें प्रसिद्धि तो पहले ही मिल चुकी थी,पुरस्कार लौटाना बेअदबी नहीं, प्रतिरोध के तरीके है, जालिया वाला बम कांड के विरोध में रवीन्द्रनाथ टैगौर ने अपनी उपाधि लौटा दी थी, लेखक का जुड़ाव जनता से होता है, वह सरकार से वचनबद्ध नहीं होता।

समीक्षाः–मैं अब तक यह नहीं समझ सका कि यदि बहुसंख्यक के वर्चस्व से भारत में जनतंत्र को खतरा है तो क्या अल्पसंख्यक के वर्चस्व से जनतंत्र खत्म नहीं होता। भारत मैं पिछले 70 वर्षो से दो विचारधाराएँ सत्ता में रही है। 1. अल्पसंख्यक तुष्टिकरण,वामपंथ मिश्रित विचारधारा जो पिछले 67 वर्षो से चली आ रही है। 91 के बाद वामपंथ में आंशिक कमी आयी किन्तु अल्पसंख्यक तुष्टिकरण निरंतर चलता रहा।

2.बहुसंख्यक तुष्टिकरण,पूँजीवाद मिश्रित विचारधारा जो पिछले दो वर्षो से निरंतर चल रही है। यह धारा पूँजीवाद की तरफ तो बहुत तेजी से बढ़ रही है किन्तु साथ ही बहुसंख्यक तुष्टिकरण की दिशा में भी थोड़ा थोडा सरक रही है। आप अर्थात् राजेश जोशी जी पिछली सरकार की उपज हैं। यह बात निर्विवाद है कि राजनेताओं ने अपने अधिकांश चरणों और भाटों को साहित्यकार, कवि,नाटककार आदि सिद्ध करके उन्हें सम्मानित किया। उन्हें अनेक पुरस्कार भी दिये। ऐसे पुरस्कार प्राप्त लोगों में कुछ योग्य लोग भी पुरस्कार पाये होंगे। अब सरकार बदली है और वह अपने चारणों भाटो को पुरस्कृत कर रही है। तो पिछले चारणों को बहुत कष्ट हो रहा है जो नहीं होना चाहिए। कुछ लोगों ने तो उचित समझकर अपने पुरस्कार वापस भी किये है। किन्तु अनेक लोग अब भी ऐसे गलत पुरस्कारों को अपने पास रखे हुए है। मैं नही कह सकता कि राजेश जी की क्या स्थिति है ।

मैंने सुना है कि भारतीय संविधान में धर्म–निरपेक्षता और समाजवाद शब्द बाद में जोडे गये जो स्वतंत्रता के प्रारंभ से संविधान के भाग नहीं। मेरी जानकारी के अनुसार जनतंत्र की वास्तविक परिभाषा मात्र यह है कि उस देश में व्यक्ति को मौलिक अधिकार प्राप्त होते हैं। ये अधिकार भी चार ही होते हैं–1. जीने की स्वतंत्रता 2. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता 3. सम्पत्ति 4. स्वनिर्णय। जनतंत्र की परिभाषा में धर्म निरपेक्षता और समाजवाद कहीं से शामिल नहीं

होते । यदि ये अनिवार्य हैं तो रुस और चीन में धर्म निरपेक्षता और समाजवाद तो पूरी तरह थे और जनतंत्र नहीं था क्योंकि वहॉ व्यक्ति को मौलिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। भारतीय संविधान में सम्पत्ति, मौलिक अधिकार था। सम्पत्ति को निकाल कर धर्म निरपेक्षता और समाजवाद जोडा गया तो उसके बाद जनतंत्र जिंदा हो गया और उसके पहले मरा हुआ था यह राजेश जी कह सकते है मैं नहीं?समानता भी कभी जनतंत्र का हिस्सा नहीं है। जनतंत्र का अर्थ स्वतंत्रता है,समानता नहीं। संविधान के अनुसार सरकार का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार करें तथा सबको समान स्वतंत्रता दें। किसी को कम या ज्यादा स्वतंत्रता न दें। इस समानता और स्वतंत्रता के अंतर संबंध राजेश जी को समझना चाहिए।

राजेश जी ने साक्षी महाराज, आदित्यनाथ आदि कुछ साम्प्रदायिक कट्टरपंथियों की तो एक पक्षीय चर्चा की है किन्तु आजमखान ओबैसी सरीखे लोगों को भूल गये। डेढ़ वर्ष में ही उन्हें जनतंत्र पर खतरा दिखने लगा किन्तु उस दिन नहीं दिखा जिस दिन बाटला हाउस घटना में अनेक मुस्लिम सांसद, एआर अन्तुले,दिग्विजय सिंह एक समूह के रुप में अल्पसंख्यकों के पक्ष में खडें होकर जनतंत्र की हत्या कर रहे थे। दिखता भी कैसे क्योकि उसी व्यवस्था से तो उन्हें पुरस्कृत होना है।

आपने अक्षम और सक्षम साहित्यकार में विभाजन किया। आपके अनुसार पिछली व्यवस्था से पुरस्कृत सारे साहित्यकार सक्षम थे और अब पुरस्कार पाने वाले अक्षम। मैं इससे सहमत नहीं। आपने अशोक वाजपेयी,नयनतारा शहगल, को तटस्थ लिखा। इसका अर्थ है कि शेष 34 लोग तटस्थ की सीमा में नहीं आते। यह भी एक विशेष बात है। नयनतारा सहगल ने आपातकाल का विरोध किया था। अशोक बाजपेयी वामपंथी नहीं है।ये दोनों बातें तो दुनिया जानती है। किन्तु दुनिया यह नहीं जानती कि आप वामपंथी है कि नहीं या आपने आपातकाल का कितना और किस तरह विरोध किया था । आपने लिखा कि सोवियत संघ के विघटन के बाद लेखक संगठन में डिप्रेशन आ गया है। मैं नहीं समझ सका कि यदि यह बात सच है तो ऐसे लेखकों को कितना तटस्थ माना जाये।कहीं ऐसा तो नहीं कि आप स्वयं किसी विचारधारा से प्रतिबद्ध हो और तटस्थता का नाटक कर रहे हो।

आपने भूमि अधिग्रहण कानून को पूँजीपतियों का षड़यंत्र बताया। आप जानते है कि स्वतंत्रता के बाद से लेकर 2013 तक भूमि अधिग्रहण के संबंध में इस कानून से भी कई गुना अधिक घातक कानून लागू था। चुनाव पूर्व कांग्रेस पार्टी ने उस कानून में संशोधन किया। जिसे मोदी जी ने पूँजीपतियों के पक्ष हल्का करने का प्रयास किया। 67 वर्षो तक पिछली सरकारें पूँजीपतियों के पक्ष में भूमि अधिग्रहण करती रही। तो आपको कभी कोई षड़यंत्र नहीं दिखा। एकाएक मोदी सरकार में आपकी ऑख खुली। आपने असहिष्णुता पर भी प्रश्न उठाये है आपको बताना चाहिए कि स्वतंत्रता के बाद 67 वर्षो तक असहिष्णुता घट रही थी क्या? क्या एकाएक घटती हुई असहिष्णुता बढ़नी शुरु हो गई।

मैं मानता हूँ कि पिछली व्यवस्था भी खराब थी और यह व्यवस्था भी खराब है। भारत में लोकतंत्र है किन्तु वह इस तरह आदर्श नहीं कहा जा सकता जो अल्पसंख्यक बहुसंख्यक समाजवाद पूँजीवाद से प्रभावित हो। यद्यपि मैं व्यक्तिगत रुप से अल्पसंख्यक तुष्टिकरण की अपेक्षा बहुसंख्यक तुष्टिकरण को तथा समाजवाद की अपेक्षा पूँजीवाद को कम घातक मानता हूँ। क्योंकि इस्लाम,इसाई, सिख आदि संगठन हैं जबकि हिन्दू कोई संगठन नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि अल्पसंख्यकों के लिए कहीं से फतवे जारी होते है जो उनके लिए बाध्यकारी हैं। ऐसे फतवे हिन्दू में जारी नहीं हो सकते जो सबके लिए बाध्यकारी हों। तीसरी बात यह भी है कि अल्पसंख्यक किसी भी मामले में क्रिया करते है। जिसकी हिन्दुओं में प्रतिक्रिया होती है। किन्तु बाबरी मस्जिद घटना को छोडकर अन्य मामले में हिन्दूओं ने कभी क्रिया नहीं की। यदि संघ परिवार को छोड दे तो एक भी हिन्दू ऐसा नहीं मिलेगा जो किसी भी क्रिया को अच्छा मानता हों। अच्छी आदर्श व्यवस्था तो यह होती कि अल्पसंख्यक,बहुसंख्यक तुष्टिकरण को छोडकर सर्वसंख्यक तुष्टिकरण का मार्ग पकडा जाता अर्थात भारत धर्मो, जातियों का संघ न होकर एक सौ पच्चीस करोड़ व्यक्तियों का संघ होता। अर्थात सबको व्यक्तिगत रुप से धर्म जाति मानने की स्वतंत्रता होती किन्तु राज्य इससे पूरी तरह अलग रहता। इसी तरह आर्थिक मामलों में भी समाजवाद,पूँजीवाद को छोडकर आर्थिक समाजीकरण की दिशा में बढा जाता। जिसका अर्थ है कि परिवार, गॉव,जिला सभी इकाइयॉ अपनी अपनी सीमा में आर्थिक मामलों में स्वतंत्र होतीं और सरकार के पास सिर्फ थोडें ही आर्थिक अधिकार होते। यदि आप वास्तव में जनतंत्र को मजबूत करना चाहते हैं तो छोडिए अल्पसंख्यक ,बहुसंख्यक, पूँजीवाद, समाजवाद की प्रशंसा, आलोचना का लोभ और जुड़ जाइये व्यवस्था परिवर्तन आन्दोलन से जिससे इन सारे विवादों से मुक्ति मिल सकती है।

व्यवस्था परिवर्तन क्या और कैसे?

समाज के सुचारु संचालन तथा प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए जो कार्यप्रणाली बनती है उसे व्यवस्था कहते है। व्यवस्था के तीन भाग होते हैं–1.राजनैतिक व्यवस्था 2.आर्थिक व्यवस्था 3.सामाजिक व्यवस्था।

जब भारत में गुलामी आयी तो राजनैतिक व्यवस्था ने सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था को गुलाम बना लिया। सन् 47 के पूर्व तक यह राजनैतिक व्यवस्था विदेशी थी। सन् 47 के बाद भारत स्वतंत्र हुआ और वह राजनैतिक व्यवस्था भारत के चुने हुए जनप्रतिनिधियों के हाथ में आ गई। किन्तु सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था उसी तरह गुलाम बनी रही जिस तरह स्वतंत्रता के पूर्व विदेशियों की थी। स्वतंत्रता के पूर्व संविधान पर विदेशियों का आधिपत्य था। और स्वतंत्रता के बाद संविधान पर स्वदेशी राजनेताओं का आधिपत्य हो गया। वर्तमान समय में भारत की सम्पूर्ण सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर राजनैतिक व्यवस्था का एकछत्र आधिपत्य है। क्योंकि भारत का संविधान राजनैतिक व्यवस्था के द्वारा बनाया गया है, उसी के द्वारा संशोधित भी किया जाता है, तथा उसी के द्वारा लागू भी कराया जाता है।

आदर्श व्यवस्था वह मानी जाती है जिसमें तीनों अर्थात् राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाएँ पूरी तरह स्वतंत्र भी हों, एक दूसरे की सहायक भी हों, एक दूसरे की नियंत्रक भी हों। यदि हम स्वतंत्र आकलन करें तो भारत की सामाजिक,आर्थिक व्यवस्था न स्वतंत्र है, और न ही राजनैतिक व्यवस्था को अनुशासित करने में उसका कोई अधिकार है। राजनैतिक व्यवस्था के तीन भाग हैं—1. न्यायपालिका 2. विधायिका 3. कार्यपालिका। इसी तरह सामाजिक व्यवस्था के भी कई भाग है— 1.धार्मिक व्यवस्था 2. पारिवारिक व्यवस्था 3.जातीय व्यवस्था आदि। आर्थिक व्यवस्था में भी कुछ भाग हो सकते हैं। राजनैतिक व्यवस्था के भी तीनों अंग आपस में एक दूसरे के पूरक न होकर प्रतिस्पर्धी बन गये हैं, जो स्वाभाविक भी है। यदि सत्ता एक जगह इक्ट्ठी होगी तो प्रतिस्पर्धा भी स्वाभाविक है और टकराव भी । राजनैतिक व्यवस्था के तीनों अंग मिल जुलकर सामाजिक, आर्थिक, व्यवस्था को गुलाम बना कर रखने के मामले में एकजुट हैं। तीनों ही अंग समाज के समक्ष यह प्रमाणित करते रहते हैं कि संविधान सर्वोच्च है। संविधान भगवान की तरह सम्मानित है, तथा सबको हर परिस्थिति में संविधान का सम्मान करना चाहिए। दूसरी ओर राजनैतिक व्यवस्था के तीनों अंग संविधान को गुलाम बनाकर रखते हैं और कभी इस प्रतिस्पर्धा में एक दूसरे से टकराते भी रहते है।

वर्तमान परिस्थितियों में व्यवस्था परिवर्तन का एक ही अर्थ है कि सामाजिक ,आर्थिक व्यवस्था को राजनैतिक गुलामी से मुक्त कराया जाये। इसका अर्थ हुआ कि सबसे पहले भारत के संविधान को राजनैतिक व्यवस्था की गुलामी से मुक्त कराना होगा। क्योकि भारत में संविधान का शासन है और संविधान ही राजनैतिक व्यवस्था का गुलाम है। यद्यपि यह कार्य असंभव तो नहीं है किन्तु कठिन अवश्य है। साथ ही इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग उपलब्ध भी नहीं है। क्योकि धीरे धीरे राजनैतिक व्यवस्था सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था को अधिक से अधिक गुलाम बनाती जा रही है। इस व्यवस्था परिवर्तन के हमारे पास दो ही अहिसंक मार्ग उपलब्ध हैं — 1. संवैधानिक तरीके से संसद में दो तिहाई बहुमत प्राप्त करके संविधान संशोधन कराना। 2. वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था पर प्रबल जनमत का दबाव बनाकर संविधान में संशोधन कराना। दोनों मार्गो में से कौन सा मार्ग उचित है यह हमारा विषय नहीं है। किन्तु दोनों ही मार्गो में एक अनिवार्य आवश्यकता है कि समाज में राजनैतिक व्यवस्था को नियंत्रित करने की भूख पैदा हो, और इसके लिए प्रबल जनमत जागरण हो। यदि भूख पैदा होगी तो कोई न कोई मार्ग निकलेगा। व्यवस्थापक ने ऐसे जनमत जागरण की शुरुवात कर दी है। व्यवस्थापक अर्थात् व्यवस्था परिर्वतन अभियान कमेटी ने लोक स्वराज्य बिल के नाम से समाज के समक्ष एक प्रस्ताव रखा है जिसके माध्यम से जनमत जागरण का प्रयत्न प्रांरभ किया गया है।

हम जानते हैं कि राजनैतिक व्यवस्था कई सौं वर्षो से सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था को गुलाम बनाकर रखे हुए है। इसका अर्थ है कि रजनैतिक व्यवस्था से जुड़े लोग बहुत शक्तिशाली भी हैं, और चालाक भी। वे समाज में ऐसे परिर्वतन की भूख में या तो बाधा उत्पन्न करेंगें या मार्ग भटकायेंगे। कोई धार्मिक आधार लेगा, तो कोई जातिय आधार। कोई बेटी बचाओं को प्रथमिकता देगा तो कोई भूख मिटाओ को। कोई अमीरी रेखा बनाने की बात करेगा तो कोई गरीबी मिटाने की। ये सभी लोग ऐसे उद्देश्य से बंधे है कि सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था चाहे जितनी सुविधा ले ले किन्तु राजनैतिक व्यवस्था से मुक्ति की भूख न पैदा हो। जबकि हमारा उद्देश्य है कि समाज में चाहे सुविधा मिले या न मिले किन्तु राजनैतिक व्यवस्था की गुलामी से मुक्ति चाहिए। जिसका अर्थ है कि राजनैतिक , आर्थिक , सामाजिक व्यवस्थाएँ एक दूसरे की पूरक हो ,नियंत्रक हो किन्तु एक दूसरे से स्वतंत्र भी हों । आप सबसे अपेक्षा है कि आप राजनैतिक व्यवस्था के एजेंटो से स्वयं गुमराह न हों तथा अन्य लोगों को भी गुमराह होने से बचावें। साथ ही आपसे यह भी अपेक्षा है कि आप इस जनमत जागरण में यथाशक्ति यथासंभव सहयोग करें।